भक्ति की धारणा और इस्लाम

मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ां

विषय-सूची

"अल्लाह के नाम से जो अत्यन्त दयावान और बड़ा कृपाशील है।"

दो शब्द

धार्मिक जगत में भक्ति और उपासना बहुचर्चित विषय रहा है। धार्मिक विचार विशेषतः भक्ति-भाव के बिना जीवन अत्यन्त नीरस होकर रह जाता है। भक्ति का रसात्मक भाव वास्तव में जीवन की मूल आत्मा है।

इस पुस्तक में हमने यह देखने की कोशिश की है कि भारत में भक्ति-भाव के प्रति क्या दृष्टिकोण पाया जाता है और इस्लाम भक्ति-भाव के प्रति क्या विचार रखता है। और इसे किस दृष्टिकोण से देखा गया है। भक्ति बिना प्रेम-पात्र के संभव नहीं।

यह मानव-आत्मा का परम धर्म है कि वह अपने इष्ट या प्रेम-पात्र का ज्ञान प्राप्त करे और अपने स्वरूप को जानने का प्रयास करे। इसके बाद ही वह समझ सकता है कि ईश्वर के बिना उसकी आत्मा उद्देश्यहीन और निरर्थक है। आत्मा और परमात्मा का ज्ञान ही मनुष्य को पशुओं से अलग करता और श्रेष्ठता प्रदान करता है।

भक्ति के सम्बन्ध में इस्लाम की शिक्षा क्या है? इसका उल्लेख किताब के अन्त में किया गया है और इस सम्बन्ध में इस्लाम की विशिष्टता और विशुद्धता पर प्रकाश डाला गया है।

इस पुस्तक की विशुद्धता और परिपूर्ण रूप देने में आदरणीय एस० कौसर लईक़ साहब (संपादक) का हमें पूरा सहयोग प्राप्त रहा। आपने कई आधारभूत संशोधन करके इसे और अधिक उपयोगी बनाने का पूरा प्रयास किया इस सहयोग के लिए हम उनके तहे-दिल से आभारी हैं। ईश्वर उनको इसका महान् प्रतिदान प्रदान करे, हमारी यह दुआ है।

किसी भी विषय पर किसी की भी क़लम अकाट्य नहीं हो सकती। अतएव अनुरोध है कि इसे बीजक रूप समझकर भण्डार तक पहुँचाने का

चिंतक पुरुष प्रयास करें, अन्यथा विवादी लोग प्रत्यक्ष दिनकर पर भी विवाद खड़ा करने का प्रयास करते हैं।

हमें पूर्ण विश्वास है कि पाठकगण गंभीरता से इसका अध्ययन करेंगे। क्योंकि यह विषय हमारे जीवन का मौलिक विषय है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। यदि अपने जीवन को सफल देखना है तो हमें इस सम्बन्ध में सही सत्यानुकूल निर्णय लेना होगा।

विनीत

मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ां

भक्ति की धारणा

भक्ति मानव-मात्र की धार्मिक ही नहीं उसकी मनोवैज्ञानिक आवश्यकता भी है। भक्ति-भाव और धार्मिक चेतना में कोई अन्तर नहीं पाया जाता है। भक्ति एक विशिष्ट प्रेम है। इस विशिष्ट प्रेम का पात्र एक ही हो सकता है। भक्ति में अनेक प्रेम-पात्र और इष्ट की संभावना नहीं होती।

भक्ति शब्द 'भज्' धातु में 'क्तिन' प्रत्यय के संयोजन से बना है। 'भज्' धातु का अर्थ होता है 'स्मरण करना', 'चिन्तन करना', अनुशीलन करना। वस्तुतः ईश्वर का स्मरण और चिन्तन सदैव बनाए रखना, प्रत्येक कर्म में ईश्वर का ही अनुशीलन भक्ति का स्वरूप लक्षण है। अर्थात् ईश्वर से अपना सम्बन्ध और उसका आश्रय प्राप्त करने के भाव के बिना भक्ति की कल्पना नहीं की जा सकती । कोरा ज्ञान भक्ति के लिए काफ़ी नहीं। भक्ति का मूल आधार भावना है और भावना का सम्बन्ध हृदय से होता है।

विद्वानों का एक मत यह भी है कि भक्ति शब्द का विकास 'भज् सेवायाम' से हुआ है। अर्थात् भगवान की सेवा करना। दोनों मतों में कोई मौलिक भेद नहीं है। संस्कृत-ग्रंथों में भक्ति की मिलती-जुलती व्याख्या की गई है। नारद भक्ति-सूत्र में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि 'ईश्वर के प्रति प्रेम ही भक्ति है।[1] मालूम हुआ कि ईश्वर से निस्स्वार्थ और अनन्य प्रेम करने का नाम भक्ति है। यानी हर प्रकार से स्वयं को अपने इष्ट के प्रति समर्पित होना भक्ति है। नारद तो यहाँ तक कहते हैं कि "अपने सभी कर्मों को ईश्वर के प्रति अर्पण करना और ईश्वर का थोड़ा-सा विस्मरण होते ही व्याकुलता का एहसास करना ही भक्ति है।[2]

---

1. सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा (ना॰ भ॰ सू॰-2) "अर्थात् वह (भक्ति) उस (परमेश्वर) में परम प्रेमस्वरूप है।"

2. तस्मिन्ननन्यता तद्विरोधिषूदासीनता च॥ (ना॰ भ॰ सू॰-9)
"उस (भक्ति) में अनन्यता और उसके विरोधी विषयों के प्रति उदासीनता (आवश्यक) है।
नारदस्तु तदर्पितासि लाचार तातद्विस्मरणे परमव्या—कुलवेति॥ (ना॰ भ॰ सू॰-19)
"देवर्षि नारद के मत से अपने सब कर्मों को ईश्वर को समर्पित करना और ईश्वर का थोड़ा-सा भी विस्मरण (भूल जाने की स्थिति) होने पर परम व्याकुल होना ही भक्ति है।"

चरम भक्ति शुद्ध प्रेम ही है। फिर भी शास्त्रों में भक्ति के कई प्रकारों का उल्लेख किया गया है। शास्त्रों के आचार्यों के अनुसार मूल रूप से भक्ति दो प्रकार की होती है। गौणी भक्ति और परा भक्ति। ये वास्तव में भक्ति के दो स्तर या स्थितियाँ हैं। गौणी भक्ति साधनावस्था है और परा भक्ति सिद्धावस्था की सूचक है। अर्थात् गौणी भक्ति ईश्वर से अनन्य प्रेम स्थापित करने के लिए विभिन्न साधनों को अपनाने का नाम है। विभिन्न साधनों के द्वारा परम भक्ति को प्राप्त करने के प्रयासों की अवस्था ही को गौणी भक्ति कहा गया है। जब प्रेम-पात्र या इष्ट के साथ पूर्ण प्रेम स्थापित हो जाता है, दूसरे शब्दों में यह कि जब भक्ति के क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त हो जाती है, तो वह अवस्था परा भक्ति कहलाती है।

गौणी भक्ति के भी दो प्रकार माने गये हैं : वैधी और रागानुगा (प्रेमानुगा)। वैधी भक्ति शास्त्र-सम्मत विधि-विधानों के द्वारा प्राप्त की जाती है। साधारणतया जप, तप, संयम और तीर्थाटन आदि को भक्ति-भाव के प्राप्त करने का साधन या उपाय माना गया है। रागानुगा भक्ति उस भक्ति को कहते हैं जो स्वतः बिना किसी साधन और उपाय के प्राप्त हो जाए। यह भक्ति मानव-चित्त में बिना उपाय के प्रस्फुटित हो जाती है। इसके लिए कुछ करना नहीं होता।

भक्ति के अन्य रूप

यद्यपि भक्ति एक ही है किन्तु भक्तों की आसक्ति एवं मनोभावों के आधार पर इसके कई रूप कहे गए हैं। उनमें निम्न पाँच मुख्य हैं।

1. दास्य रस : दास्य रस सेवामय होता है। इसमें ईश्वर और भक्त के मध्य स्वामी-सेवक का भाव होता है। जब भक्त प्रभु को अपना स्वामी, मालिक और स्वयं को उसका दास और सेवक स्वीकार करके भक्ति करता है और इसमें जो उसे आनन्द और रस प्राप्त होता है वह दास्य-रस होता है।

2. सख्य रस : मित्रता में जो रस या भाव पाया जाता है वह सख्य रस या सख्य भाव कहलाता है। इसमें मनुष्य ईश्वर को अपना सबसे बढ़कर अपना सहचर और मित्र होने का एहसास करता है।

3. वात्सल्य रस : पिता-पुत्र भाव को लेकर जो प्रेम किया जाता है, उससे जो रस, आनन्द प्राप्त होता है वह वात्सल्य रस कहलाता है। ईश्वर जगत् का सबसे बड़ा पिता है।

4. शान्ति रस : आराध्य और आराधक के भाव के साथ भक्ति में लीन होना शान्ति रस है।

5. माधुर्य रस : इसमें प्रीति में रत होने का भाव और समर्पण की भावना पाई जाती है। उदाहरणार्थ पति-पत्नी के मध्य जिस भाव का अनुभव होता है वह माधुर्य भाव होता है।

नारद की दृष्टि में प्रेम रूपा भक्ति एक होते हुए भी ग्यारह-प्रकार की होती है। नारद भक्ति-सूत्र में है—

गुणमाहात्म्यासक्ति रूपासक्ति पूजासक्ति स्मरणासक्ति दास्यासक्ति सख्यासक्ति

वात्सल्यासक्ति कान्तासक्ति आत्मनिवेदनासक्ति तन्मयासक्ति परमविरहासक्ति-रूपैकधाप्येकादशधा भवति ॥82॥

अर्थात् "भक्ति एवं आसक्ति एक प्रकार की होते हुए भी—

गुणमाहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्वरणासक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, कान्तासक्ति वात्सल्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयासक्ति, और परमविरहासक्ति रूप– ग्यारह प्रकार की होती है।

उपर्युक्त आसक्तियों का संक्षिप्त परिचय कराते हैं–

1. **गुणमाहात्म्यासक्ति :** जब प्रभु के गुणों के सुनने और गान करने में आसक्ति होती है तो यह गुणमाहात्म्यासक्ति कहलाती है। राजा परीक्षित, नारद, पृथु इसी श्रेणी के भक्त थे। क़ुरआन में भी कहा गया है कि प्रभु के गुणों का गान यानी 'तसबीह' अधिकता से किया करो।

2. **रूपासक्ति :** प्रभु के किसी विशेष रूप और सौन्दर्य के प्रति आसक्ति और प्रेम जब होता है तो यह रूपासक्ति होती है। जैसे कृष्ण के बालरूप में यशोदा और किशोर रूप पर गोपिकाएँ आसक्त थीं। प्रभु अत्यन्त सुन्दर और सौन्दर्यमय है ऐसी आसक्ति भक्त में होना स्वाभाविक भी है।

3. **पूजासक्ति :** प्रेम का अतिरेक ही पूजा है यह स्वाभाविक है। पूजा की भावना को इससे परितोष प्राप्त होता है।

4. **स्मरणासक्ति :** इसमें प्रेम-पात्र या प्रियतम को निरन्तर याद किया जाता है। शास्त्रों से ज्ञात होता है कि प्रह्लाद इसी आसक्ति के भक्त थे।

5. **दास्यासक्ति :** अपने प्रियतम की दासता और गुलामी को अपने लिए सौभाग्य समझ कर उसकी भक्ति को अपने लिए परम निधि समझना दास्यासक्ति कहलाती है। हनुमान, अक्रूर इसी श्रेणी के भक्त हुए हैं।

6. **सख्यासक्ति :** मित्रता और सहचर के भाव के साथ प्रेमपात्र को पूज्य और आराध्य समझना सख्यासक्ति होती है।

7. **कान्तासक्ति :** प्रेमी-प्रेमिका की भाँति जब ईश्वर से प्रेम और उसकी उपासना की जाती है तो यह कान्तासक्ति कहलाती है। कृष्ण की भक्त गोपिकाएँ इसी श्रेणी की थीं।

8. **वात्सल्यासक्ति :** प्रियतम और भक्त के मध्य स्नेह के भाव का होना। जैसे पिता और पुत्र के मध्य यह भाव उभरा हुआ होता है।

9. **आत्मनिवेदनासक्ति :** इसमें आत्मसमर्पण की भावना को प्रधानता

प्राप्त होती है। इसमें भक्त मात्र प्रभु का होकर रह जाता है। इसमें अपना, मैं, मेरा कुछ नहीं रहता।

10. तन्मयासक्ति : प्रियतम में विलीन हो जाना, तन्मय हो जाना। भक्त इस आसक्ति या भक्ति में ईश्वर में पूरी तरह विलीन हो जाता है।

11. परम विरहासक्ति : प्रियतम के वियोग की स्थिति में व्याकुल होना। इस श्रेणी के भक्त को प्रभु से क्षण-भर का बिछड़ना असह्य होता है।

भक्ति के महत्त्व पर नारद ने भक्ति-सूत्र में लिखा है कि प्रेमा भक्ति अमृत रूपा है, प्रेम अखंड है और बढ़ता रहता है। प्रेम का स्वरूप अवर्णनीय है। यह शान्त रूप और परम आनन्द रूप है। प्रेम सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभव रूप है। वे कहते हैं कि भक्ति स्वयं फलरूपा है, अर्थात् साधन और साध्य दोनों है।

आत्म-तत्व और ब्रह्म

भक्ति के महत्त्व और उसकी आवश्यकता को जानने के लिए ज़रूरी है कि हम आत्म-तत्व और ब्रह्म के बारे में समझ लें। इससे आत्मा और परमात्मा के मध्य जो सम्बन्ध पाया जाता है उसके जानने में आसानी होगी।

उपनिषद् में आत्मा को परम सत् या परम तत्व माना गया है। उसकी दृष्टि में आत्मा अलौकिक, सर्वव्यापक और ज्योति स्वरूप है। यह तत्व नित्य और शाश्वत है, यह निर्विकारी और निरवयव है। इसका स्वरूप चैतन्य है। चित्त रूप होने के कारण आत्मा और ब्रह्म में अनुकूलता व सामंजस्य पाया जाता है।

आत्मा सभी भौतिक तथा मानसिक (सूक्ष्म) इन्द्रियों और मन से भिन्न है। आत्मा श्रवण का श्रवण, प्राणों का प्राण, क्षेत्र का क्षेत्र है। शरीर पर उसी का शासन है। वह सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान् से महान् है। आत्मा की सूक्ष्मता और महानता की कल्पना करनी हमारी सामान्य कल्पना से परे है।

आत्मा की अवस्थाएँ स्वीकार की गई हैं। वे सात हैं– जागृतावस्था, स्वप्नावस्था, सुषुप्ति अवस्था, तुरीयावस्था, तुरीयातीतावस्था, भगवतचेतनावस्था और ब्राह्मी चेतनावस्था।

चेतना का ठीक-ठीक वर्तमान में रहना ही आत्मा की जागृत अवस्था

होती है। आप यह पुस्तक पढ़ रहे हैं और समझ रहे हैं यह आत्मा की जागृत अवस्था में ही स्थित होने का प्रमाण है। जब मनुष्य जागते हुए भी कल्पना और विचार में खोया रहता है, वह भविष्य की कोई योजना बना रहा होता है या अतीत की किसी याद में खोया हुआ होता है। ऐसी स्थिति में वह वर्तमान में न होकर एक प्रकार के स्वप्न लोक में होता है। ऐसा नहीं कि व्यक्ति निद्रा में होता है। यह जागृत और निद्रा के बीच की स्थिति होती है। सुषुप्ति अवस्था में हमारी पाँचों ज्ञानेद्रियाँ (चक्षु, श्रोत्र, रसना, घ्राण और त्वचा) और पाँचों कर्मेंद्रियाँ (हाथ, पैर, उपस्थ और गुदा) विश्राम करते होते हैं। यह एक गहरी नींद की अवस्था होती है। सुषुप्ति अवस्था वस्तुतः आत्मा की निष्क्रिय अवस्था होती है। आत्मा की चौथी अवस्था 'तुरीय' है। आत्मा की यह अवस्था व्यक्ति के अपने प्रयासों से प्राप्त होती है। आत्मा की इस अवस्था में न तो कोई उसका गुण होता है और न ही कोई रूप। इसमें न जागृति है, न स्वप्न और न सुषुप्ति। यह निर्विचार और भूत व भविष्य की कल्पना से परे पूर्ण जागृति की स्थिति होती है। तुरीयावस्था के बाद तुरीयातीत अवस्था आती है। चेतना की इस अवस्था को प्राप्त साधक को ही योगी या योगस्थ कहा जाता है। इस अवस्था में आत्मा को स्थूल शरीर या इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं रहती। साधक इस अवस्था में स्थूल शरीर और इन्द्रियों के बिना भी सब कुछ कर सकता है। चेतना की इस अवस्था को ही सहज-समाधि भी कहा जाता है।

तुरीयातीत अवस्था के बाद आत्मा की छठवीं अवस्था भगवत चेतना अवस्था आती है। इस अवस्था में व्यक्ति को सारा जगत् ईश्वरमय प्रतीत होने लगता है अर्थात् ईश्वर की शक्ति और उसका सौंदर्य हर जगह अवलोकित होने लगता है। वह सम्पूर्ण जगत् में ईश्वर की सत्ता स्पष्टतः देखने लगता है। यह एक महान् सिद्ध योगी की अवस्था होती है।

आत्मा की सातवीं अवस्था ब्राह्मी अवस्था है। आत्मा जब इस अवस्था को पहुँच जाती है तो व्यक्ति अपने को ब्रह्म में विलीन पाता है। यही वह अवस्था है जब व्यक्ति को 'अहमब्रह्मास्मि' और 'तत्वमसि' अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूँ और यह सम्पूर्ण जगत् ही ब्रह्मलीन है का आभास होने लगता है।

ब्रह्म

उपनिषदों में ब्रह्म ही परम और आस्तिक तत्त्व है। ब्रह्म को नित्य, चैतन्य स्वरूप कहा गया है और आत्मा को ब्रह्म रूप की संज्ञा दी गई है, क्योंकि आत्मा का शुद्ध स्वरूप सत्, चित, और आनन्द ही है।

ब्रह्म अद्वैत सत्, ज्ञान, और अनन्त रूप है। वह अन्तर्यामी, सर्वव्यापी और शुद्ध चैतन्य है। सम्पूर्ण जगत् उसी की सृष्टि है। वही सबका सूत्रधार, सत्य और अमृत रूप है। वही वाणी को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। वही है जो आत्मा को कल्पना करने की और इन्द्रियों को कार्य करने की शक्ति प्रदान करता है। वाणी से उसे व्यक्त नहीं किया जा सकता। वह अविनाशी, अनादि और अनन्त है। वह आत्मा से भी उत्कृष्ट और सत्यस्वरूप है।

उपनिषदों में ब्रह्म के दो रूप माने गये हैं—पर (निर्गुण) और अपर (सगुण)। 'अपर' यानी सगुण इसलिए है कि वही जगत् का स्रष्टा है। जगत् की रचना बिना स्रष्टा के संभव नहीं। हम अल्पज्ञ हैं, वह सर्वज्ञ है। हम दीन हैं, वह दाता और कृपाशील है, इसलिए जगत् निराधार नहीं हो सकता सबका आधार वही है। हम उसकी उपेक्षा नहीं कर सकते। वह हमारा स्वामी है, हम उसके दास हैं। हम उसके आसक्त हैं, वह हमारा प्रेम-पात्र है। उससे अटूट प्रेम करना हमारा धर्म है। धर्म भक्ति के बिना संभव नहीं और भक्ति प्रेम-पात्र के बिना नहीं हो सकती।

ब्रह्म की गुणातीत अवस्था ही निर्गुण होना है। ब्रहृदारण्यकोपनिषद् में है कि वह न अन्दर है न बाहर, न वह खाता है न पीता। वह निरिश्रय, अलक्ष्य और निर्वाच्य है। शब्दों में उसका वर्णन संभव नहीं। वह वाणी से नहीं बल्कि वाणी उससे प्रकाशित होती है। वह अनिर्वचनीय है। बुद्धि और इन्द्रियों के ज्ञान से परे है। फिर भी वह अपरोक्षानुभूतिगम्य है। वह तर्क का नहीं, अनुभूति का विषय है। छान्दोग्य उपनिषद् में है कि वह आकाश स्वरूप, प्रकाश स्वरूप, सत्य, संकल्प, सर्वरस आदि है।

ब्रह्म ही जगत् का उपादान और निमित्त कारण है। उसका विश्व के

भीतर भी निवास है और बाहर भी। उसका शासन सर्वत्र है। वह अन्तर्यामी है। ईश्वर सर्वव्यापक और अतीन्द्रिय है। वह सत्य का भी सत्य और आत्मा की भी आत्मा है। जगत् और जीवात्मा का सूत्रधार है। वह अविनाशी होने से सत्य, चैतन्य होने से चित्त, देश-काल और वस्तु अपरिच्छिन्न होने से अनन्त है। वह निर्गुण, सगुण और परमात्मा है। देखने-सुनने के लिए उसे इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं। वह महान है। वह नेति-नेति होने से अवर्णनातीत है और इति-इति होने से भगवान रूप में वर्णनीय है।

भक्ति के साधन

भक्ति के साधन के सम्बन्ध में शास्त्रों में नौ साधनों का उल्लेख किया गया है। वे इस प्रकार हैं—

1. **श्रवण :** अर्थात् प्रभुपूज्य के गुणों और उसकी महिमा को सुनना।

2. **कीर्तन :** प्रभु का गुणगान करना।

3. **स्मरण :** ईश्वर के गुणों और विशेषताओं का निरन्तर ध्यान करते रहना।

4. **चरण सेवन :** अपने को ईश्वर का सेवक समझना, उसके चरणों की सेवा करना।

5. **अर्चन :** इष्टदेव की पूजा और उपासना करना।

6. **वन्दना :** ईश्वर की स्तुति करनी। उसकी प्रशंसा से ग़ाफ़िल न होना।

7. **दास्य :** ईश्वर को अधीश और स्वामी और अपने-आपको ईश्वर का दास और गुलाम मानकर प्रभु की दासता अपनाए रखना।

8. **सख्य-भाव :** ईश्वर को मित्र तुल्य समीपता का अनुभव करना।

9. **आत्म निवेदन :** अपने-आपको हर तरह से ईश्वर के प्रति समर्पित कर देना आत्म निवेदन है।

भक्ति के इन साधनों को नवधा भक्ति-योग भी कहा जाता है। इनका विस्तृत विवरण नारदभक्तिसूत्र (सूत्र-82) और भागवत महापुराण (7/5/23) में देखा जा सकता है।

भारत में भक्ति आन्दोलन

भारत में मुस्लिम शासन-काल में हिन्दू धर्म में एक बड़ी क्रान्ति का आरंभ हुआ, और वह है—भक्ति-आन्दोलन। भक्ति यद्यपि कोई नई चीज़ न थी। इसका सूत्रपात उपनिषद और भगवत गीता में हो चुका था। आठवीं शताब्दी में शंकराचार्य की शिक्षाओं के कारण भारतीयों में ज्ञान-मार्ग को प्रबलता प्राप्त हुई। ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी में शंकराचार्य की जटिल शिक्षाओं के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई और भक्ति आन्दोलन ने ज़ोर पकड़ा।

चौदहवीं, पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में भक्ति की लहर विशेष रूप से प्रवाहित हुई। इसका कारण यह रहा कि इस काल में कुछ बड़े सुधारक पैदा हुए उनमें कबीर, रैदास, गुरुनानक, दादूदयाल, मलूकदास, जायसी, सूरदास, रसखान, मीराबाई और हरि दास इत्यादि विशिष्ट हैं। ये उपरोक्त काल में ही हुए हैं। इन्होंने भारतीय समाज की दयनीय दशा को महसूस किया और धर्म में प्रविष्ट आडम्बरों और अंधविश्वासों को मिटाने का संकल्प किया। इन्होंने भक्ति की महिमा का वर्णन करके भक्ति-आन्दोलन को आगे बढ़ाने का कार्य किया। इन्होंने बताया कि मुक्ति भक्ति के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है।

भक्ति-आन्दोलन ने सामाजिक कुरीतियों और जाति-पाँति के भेद-भाव का खंडन किया। इन्होंने पीड़ित और पिछड़े हुए वर्गों में आत्म-सम्मान की भावना जाग्रत की। समाज-सेवा को महत्त्व दिया। सन्तों ने अपने अनुयायियों को निर्धनों और अनाथों आदि की सेवा करने पर उभारा। कर्म और शुद्ध चरित्र पर अधिक ज़ोर दिया गया।

भक्ति-आन्दोलन के प्रभाव से सम्पूर्ण भारत में आध्यात्मिक दृष्टिकोण को महत्त्व दिया जाने लगा। प्रायः भक्तों ने निराकार ईश्वर की भक्ति पर विशिष्ट ज़ोर दिया, किन्तु उनमें से कुछ ने राम और कृष्ण को अपना इष्ट देव माना।

भक्ति आन्दोलन में धार्मिक कट्टरता और जाति भेदभाव के स्थान पर

प्रेम और सहिष्णुता के भाव का आविर्भाव होने लगा। सन्तों और सूफ़ियों के उपदेशों से आपसी कट्टरता में कमी आई। इसका भारतीय सभ्यता और संस्कृति पर विशेष प्रभाव पड़ा। भक्त कवियों ने अपने मत का प्रचार काव्य के माध्यम से किया। उनके काव्य को भारतीय साहित्य में बहुमूल्य समझा जाने लगा। भक्तों में चैतन्य महाप्रभु, राम कृष्ण परम हंस, तुलसी दास और कबीर का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। इनका यहाँ पर संक्षिप्त परिचय देना विषयांतर न होगा।

चैतन्य महाप्रभु : चैतन्य महाप्रभु का जन्म एक ब्रह्मण परिवार में 18 फ़रवरी सन् 1486 में पश्चिम बंगाल के नवद्वीप (नदिया) नामक गाँव में हुआ था। बाल्यावस्था में इनका नाम विश्वंभर था, किन्तु लोग निमाई कहकर पुकारते थे। इनका एक दूसरा नाम गौरांग भी था। सन् 1509 ई॰ में इन्होंने केशव भारती से संन्यास की दीक्षा ली एवं 'कृष्ण चैतन्य' नाम धारण किया। ये शिक्षित थे । संस्कृत भाषा और अनेक धर्म-ग्रंथों का इन्होंने अध्ययन किया था। ये कृष्ण के भक्त थे। उनकी भक्ति में लीन रहते थे। इनके अनुयायी आज भी पंजाब और बंगाल में पाये जाते हैं। इन्होंने भी दूसरे भक्तों की भाँति जाति-पाँति के नियमों का विरोध किया। "मानव को प्राणी मात्र से प्रेम करना चाहिए" यह उनकी विशेष शिक्षा थी। वे कहते थे कि मोक्ष प्राप्त करने के लिए कर्म ही सब कुछ नहीं है। इसके लिए प्रेम-पात्र का गुणगान भी ज़रूरी है। कहते थे कि भक्ति के द्वारा ही आत्मा श्री कृष्ण तक पहुँच सकती है। उनका कहना था कि मनुष्य की आत्मा ही राधा है। वे अपने-आप को कृष्ण की गोपियों में शामिल समझते थे। उन्होंने वैष्णव धर्म भक्ति का मार्ग सुझाया। 48 वर्ष की अवस्था में सन् 1533 में इनका देहान्त हुआ।

रामकृष्ण परम हंस : राम कृष्ण परम हंस का जन्म 18 फ़रवरी सन् 1836 ई॰ में एक ग़रीब ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इन्हें ज़्यादा पढ़ने-लिखने का अवसर नहीं मिला। लेकिन सत्संग और तपस्या द्वारा बहुत कुछ प्राप्त किया। इन्होंने योग और तंत्र-साधना की शिक्षा प्राप्त की। वेदान्त का ज्ञान

भी प्राप्त किया। इनका व्यक्तित्व एक योगी और सन्त का रहा। उनकी दृष्टि में परम सत्य और मानव-आत्मा के मध्य बड़ी अनुकूलता और एकरूपता पाई जाती है। जब मन उच्चतम स्थिति या भूमि (स्थान) को पा लेता है तो उसे परम सत्य का अनुभव हो जाता है। यहाँ उसे समाधि प्राप्त हो जाती है। वे कहते हैं कि भक्ति से शरीर, मन और आत्मा सभी पवित्र हो जाते हैं। सामान्य लोगों के अतिरिक्त अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोग भी उनसे प्रभावित रहे। उनमें ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, विवेकानन्द और केशवचन्द सेन ख़ास हैं।

तुलसी दास : तुलसी दास ब्राह्मण परिवार से सम्बन्ध रखते थे। इनके बचपन का नाम रामबोला था। ये बचपन ही में मातृ-पितृविहीन हो गए थे। रामशैल पर रहनेवाले श्री अनन्तानन्द जी के प्रिय शिष्य श्री नरहर्यानन्द जी, जो नरहरि बाबा के नाम से प्रसिद्ध थे, ने इनको आश्रय दिया। इन्होंने तुलसी जी का नाम रामबोला से बदलकर तुलसी राम रखा, जो बाद में तुलसी दास के नाम से प्रसिद्ध हुए। नरहरि जी ही ने इन्हें राम-कथा सुनाई थी। इनका विवाह भारद्वाज गोत्र की कन्या रत्नावती से हुआ। विवाह के समय इनकी आयु 29 वर्ष थी। इन्हें अपनी पत्नी से बहुत अधिक प्रेम था। एक बार इनकी पत्नी को इनकी पत्नी के भाई इनकी अनुपस्थिति में अपने घर ले गए। जब तुलसी जी घर को वापस आए तो पत्नी को घर में न पाकर बहुत दुखी हुए और पत्नी को ही याद करते रहे। अन्ततः पत्नी का वियोग जब उन्हें असह्य हो गया तो ये अर्धरात्रि को ही ससुराल पहुँच गए। कहा जाता है कि सभी द्वार बन्द होने के कारण ये खिड़की से अन्दर गए। जहाँ उनकी पत्नी सो रही थी। पीछे-पीछे और असमय पत्नी ने अपने पति को अपने घर पर आया देखकर लोक-लज्जावश उन्हें वापस घर जाने को कहा, मगर वे तैयार न हुए। इसपर पत्नी ने पति को धिक्कारते हुए कहा—

धिग-धिग-धिग तोहिं प्राण पियारे।
चाम हाड़ अति निरस हमारे॥
ऐसो मन जो लागत रामै।
तो सुधरत तिहरे सब कामै॥

अर्थात् "हे प्रीतम! तुमको धिक्कार है जो हमारा चाम, हाड़ का बना नीरस शरीर, उसमें ऐसा मन लगाया। यदि रामजी में ऐसी प्रीति करते तो तुम्हारा सब काम बन जाता।" (रा॰ च॰ मा॰ तु॰ जी॰ च॰ 2/3-4)

पत्नी के ये शब्द तीर की भाँति तुलसी जी के हृदय में लगे और गृहस्थ का परित्याग करके राम-भक्ति में लग गए। इन्होंने अनेक तीर्थों की यात्रा की। बाद में अयोध्या में आकर संवत् 1631 में 'राम चरित मानस' महाकाव्य की रचना का शुभारंभ किया। (रा॰ च॰ तु॰ जी॰ च॰ 12/4-6) इनकी भक्ति-पद्धति रहस्य भावना से परे मानी जाती है। परमात्मा तीन गुण शील, शक्ति और सौन्दर्य का चरम उत्कर्ष प्राप्त रूप ही इस भक्ति का अवलंबन माना जाता है। तुलसी दास ने भक्ति, कर्म और ज्ञान का समन्वय पैदा करने का प्रयास किया। शैव मत, के साथ वैष्णव मत का नाम रूप पक्ष को लेकर आध्यात्मवाद, भक्तिवाद और इन सबका वेदविहित स्मृत्यनुमोदित धर्म के साथ सामंजस्य बताने का कार्य तुलसी जी ने किया।

सन्त कबीर : सन्त कबीर का जन्म बनारस में सन् 1398 ई॰ में हुआ था। कुछ विद्वानों ने यह सिद्ध किया है कि वे मुस्लिम परिवार में पैदा हुए थे और पिता का जो व्यवसाय था अर्थात् कपड़ा बुनने का, उसे कबीर ने भी अपनाया। कबीर पढ़े-लिखे न थे, लेकिन उन्होंने सत्संग के माध्यम से वेद, वेदान्त, उपनिषद और योग के विधि-विधान का ज्ञान प्राप्त कर लिया। सन् 1575 में मगहर में इनकी मृत्यु हुई।

सन्त कबीर निराकार ब्रह्म के उपासक थे। उन्होंने निर्गुण भक्ति पर ज़ोर दिया। उन्होंने मूर्ति-पूजा और बाह्य आडंबरों का खंडन किया। उन्होंने एक ईश्वर की भक्ति पर बल दिया। उनकी दृष्टि में ईश्वर की प्राप्ति हृदय और मन की शुद्धता के बिना संभव नहीं। वे समाज में भी सुधार चाहते थे। मानवमात्र की समानता पर अधिक ज़ोर दिया। उन्होंने अपनी दृष्टि से धर्म के सच्चे स्वरूप को लोगों के समक्ष रखने का प्रयास किया। उन्होंने प्रेममय और सरलतम भक्ति का प्रचार किया। वे चाहते थे कि ऐसी भक्ति का चलन हो जो सबके लिए मान्य हो और जिससे लोग एकता के सूत्र में बँध सकें। उनकी शिक्षाओं के प्रभाव से कबीर-पंथ का प्रादुर्भाव हुआ और आज भी

कबीर पंथियों का एक बड़ा समूह पाया जाता है, जो कबीर जी की शिक्षाओं को अपना जीवन आदर्श मानते हैं।

उपर्युक्त भक्त-महाविभूतियों के अतिरिक्त और भी बहुत-सी विभूतियाँ हुई हैं, जिनमें स्त्रियाँ भी सम्मिलित हैं। उनमें दादू दयाल, दरिया साहब, मीरा बाई, सहजो बाई और दया बाई के नाम सर्वोपरि हैं।

भक्ति आन्दोलन पर इस्लाम का प्रभाव

डॉ॰ तारा चन्द के अनुसार यहाँ के धर्मों पर इस्लाम का प्रभाव पड़ा। उनके मतानुसार रामानुज, रामानन्द, बल्लभाचार्य और वीर शैव सम्प्रदाय आदि इस्लाम से प्रभावित हैं। उनकी दृष्टि में शंकराचार्य पर भी इस्लाम का प्रभाव पड़ा है। लिंगायत सम्प्रदाय, जो शैव सम्प्रदाय का ही एक सम्प्रदाय है, यह भी इस्लाम से प्रभावित है। इस सम्प्रदाय के लोग हिन्दुओं के पुनर्जन्म और जाति-भेद के सिद्धान्तों को स्वीकार नहीं करते। मुर्दों को जलाते नहीं बल्कि मुसलमानों की भाँति भूमि में गाड़ देते हैं।

भक्ति-आन्दोलन के प्रायः महापुरुषों ने मनुस्मृति आदि की वर्ण-व्यवस्था व जाति-पाँति के भेदभाव, पुराणों की मूर्ति-पूजा और बाह्य आडम्बरों का स्पष्ट खंडन किया। उपदेश दिया कि मानवीय स्तर पर समस्त मनुष्य एक समान हैं। ईश्वर निराकार, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी है। उसकी दृष्टि में न कोई छोटा होता है और न कोई बड़ा।

उपर्युक्त बातों से स्पष्टतः ज्ञात होता है कि भक्ति-काल के प्रायः उपदेशकों पर इस्लाम का अवश्यतः प्रभाव पड़ा है; क्योंकि इस्लाम ही वह धर्म है जो जाति-पाँति का खंडन और एक निराकार प्रभु की आराधना का उपदेश देता है। वही कहता है कि संसार के समस्त मानव एक प्रभु की सन्तान हैं। जन्म से न कोई प्रतिष्ठित है और न कोई अधम। कर्म ही उच्च या निम्न का स्थान निश्चित करते हैं।

इस्लाम उच्च नैतिक आदर्शों का प्रचार करता है। भाईचारे की भावना को इस्लाम में विशेष महत्त्व प्राप्त है। इसमें सदाचार को अनिवार्य ठहराया गया है। इसका प्रभाव भी यहाँ के सन्तों और सुधारकों ने ग्रहण किया।

भक्ति-भाव और इस्लाम

हम जानते हैं कि अपने प्रेम-पात्र के प्रति रसात्मक प्रेम-भाव ही भक्ति है। यह रसात्मक भाव जीवन की मूल आत्मा है। इसके बिना मानव-जीवन का स्तर पाशविक जीवन-स्तर होकर रह जाता है। पशु भी खाते-पीते और अपनी नस्ल चलाते हैं। यदि यही मनुष्य का भी जीवन हो, तो उसका जीवन-स्तर पाशविक ही होगा। भले ही वह अच्छे-से-अच्छे मकान में रहता हो और अच्छे-से-अच्छा खाता-पीता हो और कहीं जाने-आने के लिए अच्छे-से-अच्छे और सुविधाजनक वाहन् का उपयोग करता हो।

जो चीज़ मनुष्य को पशु से अलग करती और उसे उच्चता प्रदान करती है, वह है अपने स्रष्टा और पालनकर्ता ईश्वर का ज्ञान और उसके सामने आत्म समर्पण। ईश्वर उसके जीवन में दाख़िल और शामिल हो। उसे ईश्वर की कृपा और उसके उपकार का बोध हो। वह ईश्वर के आगे नतमस्तक हो। संसार में वह ईश्वर से अनभिज्ञ और उसका अकृतज्ञ बनकर नहीं, बल्कि वह अपने प्रभु को अच्छी तरह जानता हो और अपने प्रभु का कृतज्ञ बनकर जीवन बिताता हो। ईश्वर की इच्छा और उसकी पसन्द ही उसकी इच्छा और पसन्द बन जाए। जिस योजना के अन्तर्गत ईश्वर ने मनुष्य को धरती में जगह दी है उसे उस योजना का पूर्ण ज्ञान हो और वह ईश्वरीय योजना के अन्तर्गत ही जीवन व्यतीत करे।

दूसरी चीज़ जो मनुष्य के जीवन को दिव्यता प्रदान करती है और जिसके कारण उसका जीवन-स्तर पशु-स्तर से भिन्न हो जाता है। वह है शाश्वत जीवन (Eternal Life) की धारणा और उसपर पूर्ण विश्वास। पशु शाश्वत जीवन और अमरता की कल्पना नहीं कर सकते और न उन्हें किसी शाश्वत और अमर जीवन के लिए पैदा ही किया गया है। वे तो पेड़-पौधे, वायु और जल की तरह मानव की सेवा के लिए पैदा किए गए हैं। मानव को ईश्वर ने श्रेष्ठता प्रदान की है। उसपर ईश्वर ने पूर्णतः अपना प्रकाश डाला है। उसे उसने उच्च स्तर की चेतना, बुद्धि, कल्पना-शक्ति, संकल्प-शक्ति

और सौन्दर्य बोध आदि गुणों से सम्पन्न किया है। उसपर अपने गुणों की छाया डाली है। मनुष्य को संवेदनशील बनाया है।

मनुष्य का कर्तव्य होता है कि जो विशिष्ट क्षमता ईश्वर ने प्रदान की है उसे भ्रष्ट न होने दे और वह समझ ले कि प्रेम-पात्र (प्रियतम) के बिना उसका प्रेम-भाव निरर्थक है। ईश्वर की उपेक्षा करके वह अपने-आप पर ज़ुल्म करेगा और वह, वह कुछ नहीं बन सकेगा जिस ध्येय से ईश्वर ने उसकी रचना की है।

ईश्वर ही वास्तव में जगत-सखा और हमारा प्रेम-पात्र है। उसकी इच्छा और उसके आदेशों की उपेक्षा न केवल यह कि अक्षम्य अपराध है बल्कि यह मनुष्य के लिए सबसे बड़ी हानि और विनाशकारी है। भक्ति-भाव अथवा रसात्मक प्रेम-भाव का अनुचित प्रयोग उस कोमल और पवित्रतम भाव का निरादर है जो ईश्वरमात्र के लिए उसके हिस्से में आया था। इससे बढ़कर मनुष्य के लिए किसी पथभ्रष्टता और अकृतज्ञता की हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

इस्लाम की विशिष्टता

इस्लाम को कई पहलुओं से विशिष्टता प्राप्त है। इस्लाम की विशिष्टता को जानने की आवश्यकता है। इस्लाम अपनी धारणाओं और जीवन-व्यवस्था की दृष्टि से किसी मनुष्य के सोच-विचार और चिन्तन पर आधारित नहीं है। यह ईश्वर की ओर से अवतरित धर्म है, जो पैग़म्बर के माध्यम से मानव के मार्ग-दर्शन के लिए अवतरित हुआ है। ईश्वर की ओर से अवतरित धर्म में किसी प्रकार की त्रुटि या कमी की संभावना नहीं पाई जा सकती।

इस्लाम की दूसरी विशिष्टता यह है कि यह एक सुरक्षित धर्म है। इसकी मूल किताब क़ुरआन जो ईश्वर की ओर से अवतरित हुआ है, अक्षरशः प्रामाणिक किताब है। इसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ है। इसी के साथ ईश्वर के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का जीवन-चरित्र और उनकी शिक्षाएँ भी पूर्णतः सुरक्षित हैं।

फिर इस्लाम ने न केवल यह कि भक्ति के अर्थ और उसके स्वरूप को

शुद्ध रूप में प्रस्तुत किया है बल्कि इस्लाम के प्रकाश में हम यह जान सकते हैं कि किस प्रकार की और कौन-सी भक्ति है जो ईश्वर के यहाँ मान्य है और कौन-सी भक्ति है जो भ्रष्ट और अमान्य है? कौन-सी भक्ति है जिसे अपनाकर व्यक्ति मुक्ति को प्राप्त कर सकता है और कौन-सी भक्ति है जो मात्र फलहीन ही नहीं बल्कि उसे अपराध और भ्रष्टता की हैसियत प्राप्त है।

इस्लाम में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों और अध्यात्म के मध्य कोई विरोध नहीं पाया जाता। अर्थात् भक्ति का मानव के पारिवारिक, नैतिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक जीवन से कोई विरोध नहीं। मानव-जीवन में कहीं भी उसका टकराव नहीं। इस्लाम मनुष्य को समग्र जीवन से जोड़ता है, तोड़ता नहीं।

भक्ति का वास्तविक स्वरूप क्या है? इसे विस्तृत रूप से इस्लाम ने प्रस्तुत किया है। भक्ति के नाम से जो भ्रष्टता पाई जाती है उसे भी स्पष्ट कर दिया है।

इस्लाम की शिक्षा यह है कि प्रेम का अतिरेक और पूर्ण विनय-भाव जिसके प्रति व्यक्त किया जा सकता है वह ईश्वर है और उसके अतिरिक्त और क़ोई नहीं हो सकता। ईश्वर ही वास्तव में हमारा इष्ट परम प्रियतम और प्रेम-पात्र है। भक्ति के लिए अनिवार्य है कि इष्ट और प्रेम-पात्र एक ही हो। प्रेम के अतिरेक में विभाजन संभव नहीं। दूसरों से जो भी लगाव और स्नेह और प्रेम हो वह ईश्वर ही के लिए हो। ऐसा प्रेम जो ईश्वर से हटकर और उससे स्वतंत्र होकर किया जाए वह अवैध है। पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने कहा है कि "जिस किसी ने मित्रता की तो अल्लाह के लिए और नफ़रत की तो अल्लाह के लिए, दिया तो अल्लाह के लिए दिया और न दिया तो अल्लाह के लिए, तो उस व्यक्ति ने अपने ईमान को परिपूर्ण कर लिया।" मतलब यह है कि जीवन का प्रत्येक पहलू ईश्वर के आदेश के अनुसार हो और इससे ईश्वर की प्रसन्नता ही अभीष्ट हो।

अरबी भाषा में प्रेम के अतिरेक को जिसके साथ पूर्ण विनय-भाव पाया जाए उसे 'खुल्लत' कहते हैं। खुल्लत केवल ईश्वर के लिए वैध है। । दूसरा

कोई इसका पात्र नहीं हो सकता। प्रेम का ऐसा अतिरेक वास्तव में पूजा (Worship) है। और पूजा ईश्वर के अतिरिक्त किसी और की नहीं की जा सकती। पूजा और आराधना या बन्दगी केवल ईश्वर ही की की जा सकती है। ईश्वर ही हमारा आराध्य, प्रियतम पूज्य है। मनुष्य की हैसियत यदि आराधक की न हो, तो उसका जीवन पशु-स्तर का जीवन होगा, बल्कि उससे भी निम्न होगा।

इस्लाम की दृष्टि में एकेश्वरवाद का पालन करनेवाला वही व्यक्ति है जो ईश्वर की ही उपासना या पूजा पूर्ण प्रेम, ईश-भय और ईश-आशा के साथ करता है। ईश्वर प्रतिसंवेदी और गुणग्राहक है वह हमारे प्रेम और भक्ति-भाव की उपेक्षा नहीं कर सकता।

वह भक्ति भ्रष्ट है जो ईश्वर के अतिरक्त किसी और के लिए हो। महापुरुषों का आदर तो किया जाएगा और उनके बलिदान और सेवा-कार्य की प्रशंसा भी की जाएगी, लेकिन उन्हें ईश्वर का स्थान नहीं दिया जा सकता, उन्हें अपना उपास्य नहीं बनाया जा सकता। किसी व्यक्ति या चीज़ को ईश्वरत्व में शरीक करना और उसका उपासक बनना अक्षम्य अपराध है और यह अपनी बुद्धि, विवेक और चेतना की उपेक्षा भी है।

क़ुरआन में पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल०) से कहा गया कि वह लोगों से कह दें—

> "(ऐ पैग़म्बर) कह दो कि मैं तो तुम्हीं जैसा एक मनुष्य हूँ। मेरी ओर (ईश्वर की तरफ़ से) प्रकाशना आती है कि तुम्हारा प्रभु-पूज्य बस अकेला प्रभु-पूज्य है। अतः जो कोई अपने रब के मिलन की आशा रखता हो उसे चाहिए कि अच्छे कर्म करे और अपने रब की बन्दगी में किसी को शरीक (सम्मिलित) न करे।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-18 कह्फ़, आयत-110)

क़ुरआन में एक और स्थान पर है—

1. इस सिलसिले में लेखक की दूसरी किताब 'रिसालत' (ईशदूतत्ववाद) का अध्ययन किया जा सकता है।

"ईश्वर इसको क्षमा न करेगा, कि उसका साझी ठहराया जाए। लेकिन इससे नीचे दरजे के अपराध को जिसके लिए चाहेगा, क्षमा कर देगा और जिस किसी ने ईश्वर का साझी ठहराया तो उसने एक बहुत बड़ा गुनाह घड़ लिया।"

(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-48)

क़ुरआन की इस शिक्षा से ज्ञात हुआ कि ईश्वर को छोड़कर या ईश्वर के साथ-साथ किसी और की उपासना करनेवाले भक्तों की भक्ति कितनी भ्रष्ट और निर्मूल होती है। वह ईश्वर जो सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान और अजन्मा है, वही हमारा प्रभु और वही हमारी भक्ति का केन्द्र हो सकता है और उसी की भक्ति हमारे लिए मुक्तिदायक और कल्याणकारी हो सकती है।

भक्ति के सहायक तत्व

यहाँ हम यह देखना चाहेंगे कि इस्लाम की दृष्टि में भक्ति का जो स्वरूप हमारे सामने आता है वह कितना पूर्ण और सन्तोषजनक है। भक्ति के रसात्मक होने में कोई सन्देह नहीं। एकेश्वर की भक्ति अत्यन्त रसमय होती है और परिपूर्ण होती है। यह परिपूर्णता एक ईश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य की भक्ति में नहीं पाई जा सकती। यहाँ उदाहरणस्वरूप कुछ चीज़ों का उल्लेख करेंगे जो यह समझने में सहायक होंगी कि ईश-भक्ति का स्वरूप क्या है? और यह कि ईश-भक्ति किसी भी रसात्मक भक्ति से बढ़कर है, कम नहीं है।

1. सृजन सम्बन्धी : ईश्वर ही हमारा पैदा करनेवाला है। सृष्टि और ईश्वर के मध्य अनुकूलता पाई जाती है। वह हमारा स्रष्टा है, उससे हमारा यह सम्बन्ध अत्यन्त मौलिक और अटूट है। हमारे अस्तित्व और पवित्र एवं सुन्दर भावनाओं का वही आधार है। उससे हमारा जो सम्बन्ध है उसमें कृत्रिमता नहीं पाई जाती, वह स्वभावतः हमारा इष्ट और प्रियपात्र है। क़ुरआन में ईश्वर कहता है—

"मैंने तो जिन्नों और मनुष्यों को इसलिए पैदा किया है कि वे मेरी बन्दगी करें।" (क़ुरआन, सूरा-51 ज़ारियात, आयत-56)

इस आयत से मालूम हुआ कि ईश्वर ही ने हमें पैदा किया है और हमारा कर्तव्य है कि हम उसके बन्दे बनकर रहें। उसने जगत् में सारी चीज़ें हमारे लिए पैदा कीं और हमें अपनी भक्ति और बन्दगी के लिए। क़ुरआन में स्पष्टतः कहा गया है—

"वही (ईश्वर ही) तो है जिसने तुम्हारे लिए धरती की सारी चीज़ें पैदा कीं।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-29)

"क्या तुमने देखा नहीं कि अल्लाह ने जो कुछ आकाशों और जो कुछ धरती में है, सबको तुम्हारे काम में लगा रखा है और उसने तुम पर अपनी प्रकट और अप्रकट अनुकंपाएँ पूर्ण कर दी हैं।"
(क़ुरआन, सूरा-31 लुक़मान, आयत-20)

ईश्वर की कृपा और दयालुता असीम है। उसकी रहमतों की गणना असंभव है। ऐसे प्रिय-पात्र ईश्वर को छोड़कर किसी और को अपना प्रभु-प्रिय बनाना कितना बड़ा अन्याय है। इसे साधरण व्यक्ति भी समझ सकता है।

2. वह सत्य है : ईश्वर सत्य है। कल्पना नहीं । क़ुरआन में है—

"अल्लाह (ईश्वर) ही सत्य है... और उसे हर चीज़ की सामर्थ प्राप्त है।" (क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयत-6)

"ईश्वर ही सत्य है। ईश्वर ही सर्वोच्च महान है।"
(क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयत-62)

सत्य (हक़) उसे कहते हैं जो यथार्थ हो और सर्वगुण सम्पन्न हो। जो जीवन्त हो और शुभ हो। जितने अच्छे गुण हैं वे सभी उसमें विद्यमान हों। भलाई का वह स्रोत हो, बुराई का जिससे कोई सम्बन्ध न हो। क़ुरआन में है—

"अल्लाह (ईश्वर) ही ख़ैर (उत्तम) और शेष रहनेवाला है।"
(क़ुरआन, सूरा-20 ताहा, आयत-73)

3. शुभ और सुन्दर है : सत्य होने के कारण ईश्वर शुभ और सुन्दर भी है। उसके सभी कार्यों में सुन्दरता पाई जाती है। किसी चीज़ या कार्य का सत्यानुकूल होना इसकी अपेक्षा करता है कि वह सुन्दर और अच्छा भी हो।

क़ुरआन में है—

"उस (ईश्वर) ने आकाशों और धरती को सत्यानुकूल (हक़ के साथ) पैदा किया और तुम्हारे रूप बनाए, तो बहुत ही सुन्दर बनाए। और उसी की ओर अन्ततः जाना है।"

(क़ुरआन, सूरा-64 तग़ाबुन, आयत-3)

जब ईश्वर स्वयं सत्य है तो वह सौन्दर्य से कैसे वंचित हो सकता है। पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) के कथनों से ज्ञात होता है कि परलोक में ईश-दर्शन से दर्शकों की सुन्दरता अत्यधिक बढ़ जाएगी। सत्य या ईश्वर के सम्पर्क में आने से जहाँ परम आनन्द प्राप्त होगा वहीं उसके प्रभाव से उनकी सुन्दरता भी सुन्दर से सुन्तरतम हो जाएगी। यह सत्य की विशेषताओं में से है।

भावात्मक और रसात्मक दृष्टि से यह भी आवश्यक है कि हमारी जीवन-यात्रा भी सुन्दर हो। यह उसी स्थिति में संभव हो सकती है जबकि हमारी जीवन-यात्रा की मंज़िल स्वयं ईश्वर हो। इसी लिए कहा—"उसी (ईश्वर) की ओर अन्ततः जाना है।" इस जीवन का विराम ईश्वर की प्राप्ति ही होगा।

4. ईश्वर रहस्यमय : ईश्वर के स्वरूप के विषय में कहा गया है—

"निगाहें उसे नहीं पा सकतीं, बल्कि वही निगाहों को पा लेता है। वह अत्यन्त सूक्ष्म (एवं सूक्ष्मदर्शी), ख़बर रखनेवाला है।"

(क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-103)

निगाहें उसे देख नहीं पातीं लेकिन देखती उसी से हैं। आँखों में देखने की योग्यता का वास्तविक कारण ईश्वर ही है। ईश्वर रहस्यमय है क्योंकि हमारी आँखें उसे देख पाने में असमर्थ हैं। स्वयं हमारी आत्मा भी एक रहस्य है कि वह आँखों का विषय नहीं। लेकिन आत्मा न हो तो ये आँखें कुछ भी न देख सकें। हम वास्तव में शरीर नहीं, आत्मा हैं। आत्मा सूक्ष्म और रहस्यमय है। सूक्ष्म और सूक्ष्म के मध्य इस एकरूपता एवं एकात्मकता का बड़ा महत्त्व है। इससे ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने में आसानी होती

है और उससे सम्पर्क स्थापित करना सहज हो जाता है। प्रेमी और प्रिय-पात्र के मध्य यह सहरूपता प्रेमा-भक्ति में मूलतः सहायक होती है।

5. ईश्वर हमारा आधार है : हमारे लिए यह अत्यन्त श्रेय की बात है कि ईश्वर ही हमारे जीवन का आधार है । हम उसी पर आश्रित हैं। वह परम स्वतंत्र है। किन्तु उसके बिना कुछ भी नहीं। क़ुरआन में है–

"कहो! वह अल्लाह (ईश्वर) यकता है। अल्लाह निरपेक्ष और सर्वाधार है।" (क़ुरआन, सूरा-112 इख़लास, आयतें-1,2)

"और न कोई उसका समकक्ष है।"

(क़ुरआन, सूरा-112 इख़लास, आयत-4)

अतः उसी के प्रति भक्ति-भाव उत्पन्न होना चाहिए, न कि किसी और के लिए।

6. वह एक है : क़ुरआन में है–

"अल्लाह (ईश्वर) तो केवल अकेला पूज्य-प्रभु है।"

(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-171)

"अकेले पूज्य के अतिरिक्त कोई पूज्य नहीं।"

(क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-73)

क़ुरआन एकेश्वरवाद से भरा हुआ है। ईश्वर एक है, कई नहीं। भक्ति भी एक ही की की जा सकती है। भक्ति में पूर्ण रूप से एक के लिए समर्पित होना पड़ता है। यदि पूज्य कई हों, तो भक्ति विभक्त हो जाएगी और हमारी भक्ति वास्तव में भक्ति नहीं रहेगी। भक्ति के लिए प्रेम का अतिरेक और पूर्ण समर्पण चाहिए। यह एक ही प्रिय पात्र के लिए संभव है।

7. जीवन-यात्रा ईश्वर की ओर : क़ुरआन में कहा गया है–

"कह दो मुझे तो बस यह आदेश हुआ है कि मैं अल्लाह (ईश्वर) की बन्दगी करूँ और किसी को उसका सहभागी न ठहराऊँ, मैं उसी की ओर बुलाता हूँ और उसी की ओर मुझे लौटकर जाना है।"

(क़ुरआन, सूरा-13 रअद, आयत-36)

"यह सब सांसारिक जीवन की सामग्री है और अल्लाह ही के पास अच्छा ठिकाना है।" (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-14)

"और उसी की ओर अन्ततः जाना है।"

(क़ुरआन, सूरा-64 तग़ाबुन, आयत-3)

हम ईश्वर ही के पैदा किए हुए हैं। हम उसी के हैं। दुनिया में तो हमें अस्थायी रूप से एक विशेष उद्देश्य से रखा गया है। अन्त में किसी और के पास नहीं, ईश्वर ही के पास जाना है। उसे प्रसन्न रखना अनिवार्य है। इसके लिए भक्ति-भाव के साथ सम्पूर्ण जीवन में और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसके आदेशों का पालन करना होगा। जीवन में ईश्वर से अपने सम्बन्ध और उससे प्रेम को सबसे बहुमूल्य समझना होगा।

8. वह दूर नहीं : क़ुरआन में है—

"और तुम जहाँ कहीं भी हो वह (ईश्वर) तुम्हारे साथ है और ईश्वर देखता है जो कुछ तुम करते हो।"

(क़ुरआन, सूरा-57 हदीद, आयत-4)

"जिस ओर भी तुम रुख़ करो उसी ओर ईश्वर का रुख़ है। निस्सन्देह ईश्वर बड़ी समाईवाला है (सर्वव्यापी), सर्वज्ञ है।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-115)

"हमने (ईश्वर ने) मनुष्य को पैदा किया है और हम जानते हैं जो बातें उसके जी में आती हैं। और हम उससे उसकी गरदन की रग से भी अधिक निकट हैं।" (क़ुरआन, सूरा-50 क़ाफ़, आयत-16)

ईश्वर हमसे अत्यन्त निकट है और वह हम से निकटता का सम्बन्ध चाहता है। यह निकटता केवल अस्तित्व की दृष्टि से काफ़ी नहीं, उससे हमारी निकटता हार्दिक और आत्मिक भी होनी अनिवार्य है। यह हार्दिक सामीप्य प्राप्त होता है—भक्ति, प्रेमपूर्वक समर्पण से । अतएव क़ुरआन में स्पष्टतः कहा गया है—

"उस (किसी अधर्मी) की बात न मानो और सजदे करते और क़रीब होते रहो।" (क़ुरआन, सूरा-96 अलक़, आयत-19)

9. उसका प्रेम : भक्ति और धर्म प्रेम के बिना संभव नहीं। आस्थावान और ईमानवालों के विषय में क़ुरआन में कहा गया है—

"वे ईश्वर से सबसे बढ़कर प्रेम करते हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-165)

प्रेम का प्रभाव और अनुक्रिया (Response) प्रेम ही होता है। ईश्वर भी हम से प्रेम का सम्बन्ध चाहता है और वह स्वयं अपने चाहनेवालों और नेक बन्दों से प्रेम का सम्बन्ध रखता है। अतएव क़ुरआन में है—

"मेरा रब तो बड़ा दयावान है, बहुत प्रेम करनेवाला है।"

(क़ुरआन, सूरा-11 हूद, आयत-90)

"वह बड़ा क्षमाशील, बहुत प्रेम करनेवाला है।"

(क़ुरआन, सूरा-85 बुरूज, आयत-14)

"अल्लाह दृढ़तापूर्वक (सत्य पर) जमे रहनेवालों से प्रेम करता है।"

(क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-146)

10. ईश्वर के रंग में रंगना : क़ुरआन में आया है—

"(कहो!) ईश्वर का रंग ग्रहण करो, उसके रंग से अच्छा और किसका रंग हो सकता है।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-138)

मतलब यह है कि ईश्वर के गुणों की प्रतिच्छाया मनुष्य के व्यक्तित्व में दिखाई देनी चाहिए। वह पवित्र है, पवित्रता मनुष्य के अन्दर भी पाई जाए। वह मधुर और सुन्दर है, भक्त भी मधुर और सुन्दर बने अर्थात् जीवन में माधुर्य और सौन्दर्य को महत्त्व दिया जाए। वह सच्चा है, मनुष्य को भी सत्यवादी बनना होगा। वह दानशील और क्षमाशील है, यह गुण मनुष्य में भी होना चाहिए। वह न्यायशील है, मनुष्य भी न्यायशीलता को अपनाए। वह सबका रब (पालनकर्ता) है, मनुष्य को भी सबका हित चाहनेवाला होना चाहिए। इसी प्रकार ईश्वर के अन्य गुणों की प्रतिच्छाया मानव-जीवन में प्रकट होनी चाहिए।

ईश्वर की ओर से जो दीन या धर्म अवतरित हुआ है, उसमें भी ईश्वर

के गुणों की प्रतिच्छाया दिखाई देती है। ईश्वर सत्य है, तो जिस धर्म की शिक्षा उसने दी है वह भी सत्य है। उसमें सत्य की सभी विशेषताएँ मौजूद हैं। उसमें न्याय भी है, सुन्दरता भी है और मधुरता भी। रहस्यमयता, भक्तिभाव, पवित्रता और व्यापकता और उच्च लक्ष्य एवं उद्देश्य भी उसमें मौजूद हैं।

सारांश यह है कि इस धर्म में सभी अभीष्ट विशेषताएँ पाई जाती हैं। क़ुरआन में है–

"पैग़म्बर तुम्हारे रब की ओर से तुम्हारे पास सत्य लेकर आया है।"
(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-170)

"हमारे रब के पैग़म्बर निस्सन्देह सत्य लेकर आए थे।"
(क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-43)

11. वह गुणग्राहक है : ईश्वर सबसे बढ़कर गुणों का सम्मान करनेवाला है। क़ुरआन में है–

"और जो कोई स्वेच्छापूर्वक और रुचि से कोई भलाई का कार्य करे, तो ईश्वर भी गुणग्राहक, सर्वज्ञ है।"
(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-158)

"निश्चय ही हमारा पालनहार (ईश्वर) अत्यन्त क्षमाशील, बड़ा गुणग्राहक है।" (क़ुरआन, सूरा-35 फ़ातिर, आयत-34)

इन आयतों से स्पष्ट है कि ईश्वर हमारे अच्छे कामों की उपेक्षा नहीं करता, बल्कि वह उन्हें सराहता और पसन्द करता है। अवश्यतः वह आख़िरत में अच्छे गुणों का अच्छे-से-अच्छा बदला प्रदान करेगा।

12. उसका गुणगान : ईश्वर प्रत्येक दृष्टि से गुण-सम्पन्न है। वह सर्वशक्तिमान और स्वयंभू है। उसकी सत्ता और उसके गुणों में किसी प्रकार की कमी नहीं पाई जाती। वही सम्पूर्ण जगत् और जीवन का आधार है। सब उसी पर आश्रित हैं। हर चीज़ का अस्तित्व ईश्वर के किसी-न-किसी गुण का प्रतीक है। हर चीज़ वास्तव में उसी की महानता और सुन्दरता का प्रदर्शन है। क़ुरआन में कहा गया है–

"अपने रब को बहुत अधिक याद करो और सांयकाल और प्रातः काल उसका महिमागान करते रहो।"

(क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-41)

"तो तुम अपने रब का गुणगान करो और सजदा करनेवालों में सम्मिलित रहो।" (क़ुरआन, सूरा-15 हिज्र, आयत-98)

"और अपने रब का गुणगान करो, सुर्योदय से पहले और उसके डूबने से पहले, और रात की घड़ियों में भी तसबीह (महिमागान) करो और दिन के किनारों पर भी, ताकि तुम राज़ी हो जाओ।"

(क़ुरआन, सूरा-20 ताहा, आयत-130)

"और अपने क़ुसूर की क्षमा चाहो और संध्या समय और प्रातः की घड़ियों में अपने रब की तसबीह करो।"

(क़ुरआन, सूरा-40 मोमिन, आयत-55)

"और अपने रब की प्रशंसा की तसबीह करो (अर्थात् उसका गुणगान करो), सूर्योदय से पूर्व और सूर्यास्त से पूर्व, और रात की घड़ियों में, फिर उसकी तसबीह करो और सजदों के बाद भी।"

(क़ुरआन, सूरा-50 क़ाफ़, आयतें-39,40)

"जो कुछ भी आकाशों और धरती में है उसी का (ईश्वर का) महिमागान कर रही हैं। और वह प्रभुत्वशाली है।"

(क़ुरआन, सूरा-59 हश्र, आयत-24)

13. परितोष : हृदय का ईश्वर से अत्यन्त गहरा सम्बन्ध है। वह दिलों का चैन और आराम है। वह हमारा परितोष है। लेकिन लोग दिलों का चैन न जाने कहाँ-कहाँ ढूँढ़ते हैं। वे नहीं जानते कि ईश्वर के बिना उन्हें सुख और आनन्द कहीं भी नहीं मिल सकता और जहाँ ईश्वर से हटकर आनन्द का आभास होता है वह एक धोखा है। वास्तविक आनन्द और सुख का स्रोत मात्र ईश्वर है, वहीं से वास्तविक सुखानन्द प्राप्त हो सकता है। वस्तुतः दिल प्रभु की ही तलाश करता है। वही दिल का परम मित्र है। दिल का आश्रय उसके अतिरिक्त कोई और नहीं हो सकता। हृदय बना ही है उसी के लिए।

सभी विलग हो जाते हैं, किन्तु साथ दे सकता है तो मात्र वही एक ईश्वर। उससे हमारा सम्बन्ध अटूट है। यह सम्बन्ध सुदृढ़ भी है और मधुर भी। इसी लिए क़ुरआन में सचेत किया गया है—

"जो ईमान लाएँ और जिनके दिलों को अल्लाह के स्मरण से आराम और चैन मिलता है। सुन लो, अल्लाह के स्मरण से ही दिलों को संतोष प्राप्त हुआ करता है।"

(क़ुरआन, सूरा-13 रअद, आयत-28)

14. माधुर्य रस : क़ुरआन में है—

"और हमने हर चीज़ के जोड़े बनाए, ताकि तुम ध्यान दो। अतः अल्लाह की ओर दौड़ पड़ो। मैं उसकी ओर से तुम्हारे लिए एक प्रत्यक्ष सावधान करनेवाला हूँ।"

(क़ुरआन, सूरा-51 ज़ारियात, आयतें-49, 50)

ईश्वर ने हर चीज़ के जोड़े बनाए हैं। यह ईश्वर का एक व्यापक नियम है। धरती है तो आकाश भी है। नर है तो मादा भी है। पति है तो उसके लिए पत्नी है। लोक है तो परलोक भी है। इसी प्रकार आत्मा है तो परमात्मा भी है जिसने सारा आयोजन किया है।

पति-पत्नी का सम्बन्ध अत्यन्त मधुर होता है। दोनों के मध्य प्रेम पाया जाता है। यही प्रेम पति-पत्नी के सम्बन्ध को मधुर बनाता है। इसी प्रकार हमारे और परमात्मा के मध्य भी जो सम्बन्ध है वह शुष्क कदापि नहीं है। ज्ञान और प्रेम इस सम्बन्ध को अत्यन्त मधुर बना देता है।

पति-पत्नी के सम्बन्ध का उल्लेख करते हुए क़ुरआन कहता है कि 'पति-पत्नी में जो सम्बन्ध स्थापित किया गया है उसमें सोच-विचार करनेवालों के लिए बड़ी निशानियाँ हैं।' (देखें, क़ुरआन, सूरा-30 रूम, आयत-21) इसमें एक निशानी तो यह है कि तुम्हारा सम्बन्ध ईश्वर से शुष्क कदापि नहीं है। वही तुम्हारा इष्ट और प्रियतम है। पति-पत्नी के मध्य जो प्यार पाया जाता है, उसमें ईश्वर का प्यार देखो। प्रियतम से अनभिज्ञ न रहो, अन्यथा जीवन-साधना अधूरी रह जाएगी और पूर्णानन्द से वंचित रह

जाओगे।

15. भरोसा और विश्वास : क़ुरआन में है—

"अल्लाह का डर रखो, और ईमानवालों को अल्लाह पर ही भरोसा करना चाहिए।" (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-11)

"तुम्हें जो चीज़ भी मिली है वह तो सांसारिक जीवन की अस्थायी सुख-सामग्री है। किन्तु जो अल्लाह के पास है वह उत्तम भी है और शेष रहनेवाली भी है। वह उनके लिए है जो ईमान लाए और अपने रब पर भरोसा रखते हैं।" (क़ुरआन, सूरा-42 शूरा, आयत-36)

"कह दो, वही मेरा रब है। उसके सिवा कोई प्रभु-पूज्य नहीं। उसी पर मेरा भरोसा है और उसी की ओर मुझे पलटकर जाना है।"
(क़ुरआन, सूरा-13 रअद, आयत-30)

यदि प्रिय-पात्र भरोसे के योग्य न हो तो भक्ति शक्तिहीन अर्थात् निर्बल होकर रह जाएगी।

15. प्रार्थना सम्बन्धी रस : क़ुरआन में है—

"निस्सन्देह तू (अर्थात् अल्लाह) प्रार्थना का सुननेवाला है।"
(क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-38)

प्रार्थना और बन्दगी या भक्ति में अटूट सम्बन्ध है। भक्ति यदि प्रार्थना न बन सके तो भक्ति अपूर्ण है। प्रार्थना मनोकामना की अभिव्यक्ति है। जो हृदय प्रार्थना न बन सके वह हृदय ही नहीं है। प्रार्थना हृदय का संबल है। प्रार्थना से अपने रब से मनुष्य का सम्बन्ध सुदृढ़ होता है। क़ुरआन में अनेक प्रार्थनाएँ बन्दों को सिखाई गई हैं। ईश्वर हमारा जीवन्त आधार है। उससे हमारा जो सम्बन्ध है उसमें किसी प्रकार की कृत्रिमता नहीं पाई जाती। वह स्वभावतः हमारा इष्ट और प्रेम-पात्र है।

16. सहयोग सम्बन्धी रस : ईश्वर हमारा सहायक और सहयोगी है। उसकी शिक्षा है—

"कहो, (हे ईश्वर हमें शक्ति दे कि) हम तेरी ही बन्दगी करें और

तुझी से सहायता और सहयोग की याचना करें।"

(क़ुरआन, सूरा-1 फ़ातिहा, आयत-4)

एक अन्य स्थान पर कहा—

"क्या तुम यह नहीं जानते कि आकाशों और धरती का राज्य अल्लाह ही का है और अल्लाह से हटकर न तुम्हारा कोई मित्र है और न सहायक।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-107)

एक दूसरे स्थान पर कहा—

"अतः नमाज़ का आयोजन करो और ज़कात (दान) दो और अल्लाह को मज़बूती से पकड़े रहो। वही तुम्हारा संरक्षक है। तो क्या ही अच्छा संरक्षक है और क्या ही अच्छा सहायक।"

(क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयत-78)

17. ईश-स्मरण का रस : ईश्वर से अनभिज्ञ रहना और उसे याद न रखना एक तरह की चेतनहीनता है। मनुष्य से अभीष्ट यह है कि वह होशपूर्ण हो; बेख़बरी और ग़फ़लत की हालत में जीवन व्यतीत न करे। जीवन में ईश्वर की उपेक्षा अपने जीवन की अर्थवत्ता और उसके माधुर्य की उपेक्षा है। वस्तुतः ईश्वर की विस्मृति अपना विनाश है। केवल साँस लेने को जीवन नहीं कहते। जीवन का उद्देश्य ईश्वरमय होकर रहना है और यह ईश-भक्ति और ईश्वर की बन्दगी के द्वारा ही संभव हो सकता है। ईश-स्मरण ही जीवन और जीवन का सौन्दर्य है। जीवन मधुर और अर्थपूर्ण नहीं हो सकता जब तक कि जीवन में ईश्वर के गुण प्रतिबिम्बित न हों। क़ुरआन में है—

"तुम मुझे याद रखो, मैं तुम्हें याद रखूँगा।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-152)

"और यह बरकतवाली अनुस्मृति है, जिसको हमने अवतरित किया है, तो क्या तुम्हें इससे इनकार है।"

(क़ुरआन, सूरा-21 अंबिया, आयत-50)

18. आशा सम्बन्धित रस : आशा का सम्बन्ध वर्तमान और भविष्य

दोनों से है। जीवन-व्यापार आशा पर ही निर्भर करता है। भक्ति वास्तव में मन का सूक्ष्म व्यापार है और आशा वस्तुतः भक्ति और बन्दगी का विशिष्ट अंश है। जो लोग अल्लाह पर ईमान लाए और उसके मार्ग में घर-बार छोड़ा और सत्य के लिए संघर्ष किया उनके विषय में क़ुरआन में है—

"वही अल्लाह की दयालुता की आशा रखते हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-218)

एक दूसरी जगह कहा—

"कह दो, मैं तो केवल तुम्हीं जैसा एक मनुष्य हूँ मेरी ओर प्रकाशना की जाती है कि तुम्हारा पूज्य-प्रभु बस अकेला प्रभु-पूज्य है। अब जो कोई अपने रब से मिलन की आशा रखता है उसे चाहिए कि अच्छा कर्म करे और अपने रब की बन्दगी में किसी को साझी न बनाए।

(क़ुरआन, सूरा-18 कह्फ़, आयत-110)

एक अन्य जगह आया है—

"अल्लाह की रहमत से तो केवल अधर्मी (कुफ़्र करनेवाले) ही निराश होते हैं।" (क़ुरआन, सूरा-12 यूसुफ़, आयत-87)

19. ईश-भय : ईश्वर की महानता और उसके प्रताप के समक्ष ज्ञानवान नत-मस्तक रहते हैं। वे डरते रहते हैं कि कहीं किसी बात पर उनका रब उनसे अप्रसन्न न हो जाए। उनके हृदय में ईश्वर का प्रगाढ़ प्रेम होता है, किन्तु यह प्रेम ईश्वर के प्रति उन्हें ढीठ नहीं बनाता। उनके यहाँ ईश्वर का सम्मान और आदर सदैव बना रहता है।

क़ुरआन में आया है—

"(फ़रिश्ते भी) अपने रब का, जो उनके ऊपर है, डर रखते हैं और वही करते हैं जो उन्हें आदेश होता है।"

(क़ुरआन, सूरा-16 नह्ल, आयत-50)

"अपने रब को अपने मन में प्रातः और सन्ध्या के समय में विनम्रतापूर्वक, डरते हुए और हल्की आवाज़ के साथ याद करो।

और उन लोगों में से न हो जाओ जो ग़फ़लत में पड़े हुए हैं।

(क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-205)

"निश्चय ही अल्लाह को उसका डर रखनेवाले प्रिय हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-9 तौबा, आयत-7)

"अल्लाह उनसे राज़ी हुआ और वे उससे राज़ी हुए। यह कुछ उसके लिए है जो अपने रब से डरा।"

(क़ुरआन, सूरा-98 बैयिना, आयत-8)

20. ईश-उन्मुखता : ईश्वर की ओर उन्मुख होना और ईश्वर की चाहत और आशा की दृष्टि से उसका ध्यान करना ईश-भक्ति का विशिष्ट लक्षण है। और इस उन्मुखता में जो रस और आनन्द प्राप्त होता है उसे शब्दों में बयान नहीं किया जा सकता।

क़ुरआन में है—

"अपनी ओर तो वह (ईश्वर) मार्ग-दर्शन उसी का करता है, जो उसकी तरफ़ रुजू (उन्मुख) होता है।"

(क़ुरआन, सूरा-13 रअद, आयत-27)

"(इबराहीम ने कहा,) ऐ हमारे रब, हमने तुझी पर भरोसा किया और तेरी ओर रुजू (उन्मुख) हुए और तेरी ही ओर अन्त में लौटना है।" (क़ुरआन; सूरा-60 मुम्तहिना, आयत-4)

21. ईश-दर्शन का वादा : ईश-दर्शन समस्त अभिलाषाओं और सुख के भोग का संग्राहक है। उसके दर्शन से स्वयं दर्शकों की सुन्दरता बढ़ जाएगी और सब तृप्ति मिल जाएगी। ईश-दर्शन में मनुष्य को वह सब कुछ प्राप्त हो जाएगा जिसकी अभिलाषा उसके मन में पाई जाती है। ईश-दर्शन से बढ़कर कोई सुख, विलास और आनन्द (Pleasant) नहीं। मनुष्य की प्रकृति में ईश-दर्शन की चाहत और प्यास रखी गई है। दुनिया में तो ईश्वर के होने की मात्र प्रतीति और उसका आभास रखा गया है, किन्तु आख़िरत में उसे अनावृत रूप में देखने की मनुष्य की इच्छा भी पूरी होगी और मनुष्य अपने प्रियपात्र को प्रत्यक्षतः देखेगा। परन्तु क़ुरआन से इसके लिए एक शर्त मालूम

होती है और वह यह कि मनुष्य को अपनी पवित्र भावनाओं और अच्छे कर्मों के द्वारा यह सिद्ध करना होगा कि वह ईश-दर्शन करने के योग्य और उसका पात्र है, तभी उसकी यह मनोकामना पूरी होगी। क़ुरआन में आया है—

"कितने ही चेहरे उस दिन (क़ियामत के दिन) तरो-ताज़ा और प्रफुल्लित होंगे, अपने रब की ओर देख रहे होंगे।"

(क़ुरआन, सूरा-75 क़ियामा, आयतें-22,23)

"कुछ नहीं, अवश्य ही वे (अधर्मी) लोग उस दिन अपने रब से आड़ में होंगे, (प्रभु को देख न सकेंगे)"

(क़ुरआन, सूरा-83 मुतफ़्फ़िफ़ीन, आयत-15)

22. अमरत्व का वादा : यदि मनुष्य को अमर जीवन प्राप्त न हो, तो उसकी भक्ति और ईश्वर से उसके प्रेम का अन्त हो जाएगा। भक्ति और प्रेम की मूल आत्मा यह अपेक्षा करती है कि प्रेम और भक्ति शाश्वत और अमर हो। प्रेमी प्रियतम से कभी विलग न हो। वह प्रेमरस लेता रहे, उसके इष्ट से उसका सम्बन्ध बना रहे। इसके लिए ज़रूरी है कि परलोक में मनुष्य को शाश्वत जीवन प्राप्त हो। ईश्वर के नेक बन्दे कभी भी ईश्वर से अलग नहीं होंगे और उनको जन्नत (Paradise) से कभी भी नहीं निकाला जाएगा। क़ुरआन में आया है—

"और जो लोग ईमान लाए और उन्होंने अच्छे कर्म किए—हम किसी पर उसकी सामर्थ्य से बढ़कर बोझ नहीं डालते—वही लोग जन्नतवाले हैं। वे उसमें सदैव रहेंगे।"

(क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-42)

23. ईश्वरीय मार्गदर्शन : ईश्वर ने हमें पैदा करके यों ही छोड़ नहीं दिया है। जिस तरह उसने हमें पैदा किया, हमारे लिए धरती-आकाश बनाए, सूरज और चाँद बनाए, हवाएँ चलाईं और धरती में तरह-तरह की चीज़ें पैदा कीं, ठीक उसी तरह उसने हमारे मार्गदर्शन की व्यवस्था भी की है। इसके लिए वह अपने पैग़म्बरों को भेजता रहा। इस सिलसिले की अन्तिम कड़ी हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) हैं। आप (सल्ल॰) पर हमारे मार्गदर्शन के लिए क़ुरआन

अवतरित किया, जो परिपूर्ण मार्गदर्शक है। इसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक नियमों की शिक्षा दी गई है और इसमें ब्रह्मज्ञान भी है। बताया गया है कि किस योजना के अन्तर्गत ईश्वर ने इस जगत् का निर्माण किया है। भक्ति के विषय में भी पूर्ण रूप से हमारा मार्गदर्शन किया है और यह भी बताया है कि भक्ति और ईश्वर की बन्दगी का क्या प्रभाव और परिणाम लोक-परलोक में ज़ाहिर होनेवाला है।

क़ुरआन में है–

"मार्ग-दर्शन और सहायता के लिए तो तुम्हारा रब ही काफ़ी है।"

(क़ुरआन, सूरा-25 फ़ुरक़ान, आयत-31)

"और (क़ुरआन अवतरित किया) ताकि वे लोग जिन्हें ज्ञान मिला है, जान लें कि यह तुम्हारे रब की ओर से सत्य है। अतः वे इसपर ईमान लाएँ और उसके सामने उनके दिल झुक जाएँ और निश्चय ही अल्लाह ईमानवालों को सीधा मार्ग दिखाता है।"

(क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयत-54)

"कह दो, मार्गदर्शन केवल अल्लाह का मार्गदर्शन है और हमें इसी बात का आदेश हुआ है कि हम सारे संसार के प्रभु, पालनकर्ता के प्रति समर्पित हो जाएँ।" (क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-71)

"कह दो, हमारा रब वह है जिसने हर चीज़ को आकृति दी, फिर तदानुकूल मार्गदर्शन और निर्देशन किया।"

(क़ुरआन, सूरा-20 ताहा, आयत-50)

24. समर्पण : इस्लाम का अर्थ होता है : ईश्वर के समक्ष समर्पित हो जाना। समर्पण ही इस्लाम है। भाव, भावना और कर्म प्रत्येक दृष्टि से हम ईश्वर की इच्छा के अनुकूल अपने को बनाएँ। उसी के आदेशानुसार जीवन व्यतीत करें। उससे इसकी आशा रखें कि वह दुनिया ही में नहीं पारलौकिक जीवन में भी अपने निकट जगह देगा।

क़ुरआन में है–

"जिसने भी अपने-आपको अल्लाह के समक्ष समर्पित कर दिया

और उसका कर्म भी अच्छे-से अच्छा हो, तो उसका प्रतिदान उसके रब के पास है और ऐसे लोगों के लिए न कोई डर होगा और न वे शोकाकुल होंगे।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-112)

"दीन (धर्म) तो ईश्वर की दृष्टि में इस्लाम (ईश्वर के प्रति समर्पण) ही है।" (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-19)

भक्ति और बन्दगी के स्वरूप, रस और मौलिक आधार के सम्बन्ध में क़ुरआन में बहुत कुछ वर्णन हुआ है। यहाँ हमने उदाहरणस्वरूप क़ुरआन से भक्ति के कुछ मौलिक पहलुओं (Aspects) का उल्लेख किया है। भक्ति और ईश-आराधना के सम्बन्ध में क़ुरआन की शिक्षा अत्यन्त परिपूर्ण है। उसमें कोई कमी नहीं पाई जाती।

क़ुरआन बताता है कि भक्ति केवल ईश्वर की ही की जाए और यही भक्ति वैध है। भक्ति क्योंकि एक इश्क़ है, अतः भक्ति केवल एक ही कि की जा सकती है। ईश्वर को छोड़कर किसी अन्य की भक्ति ईश्वर का अपमान और निरादर है।

क़ुरआन से यह भी ज्ञात होता है कि सांसारिक और घरेलू जीवन के प्रति अपने कर्तव्यों के निर्वाह और भक्ति में परस्पर कोई विरोध नहीं, बल्कि मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपने दायित्व और अपनी ज़िम्मेदारी को पूर्णतः निभाते हुए ईश्वर की भक्ति में लीन रहे और यही भक्ति ईश्वर के यहाँ मूल्यांकन योग्य भी होगी।